आश्रय की खोज में कास्तू

—सत्यपाल शास्त्री

स्वर्गीय नरेन्द्र खजूरिया डोगरी के जाने-माने कहानी-कार थे। अपनी सफल रचनाओं के कारण उन्होंने अत्यल्प काल में ही डोगरी कथा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। उनकी कहानियों में डुग्गर-समाज की वेदना, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा राष्ट्र प्रेम की भावना का नितान्त सूझ-बूझ से चित्रण किया गया है। कहानीकार नरेन्द्र की सफलता का प्रमाण साहित्य-अकादमी का पांच हजार रुपये का पुरस्कार (मरणोपरान्त) है।

इस लेख का विषय उनकी 'कास्तु दा काला तित्तर' कहानी के मुख्य पात्र 'कास्तु' और उसकी समस्या आश्रय की खोज है।

कास्तु आश्रय की खोज में परिस्थितिओं के उतार चढ़ाव में पिसती चली जाती है या लेखक के शब्दों में उसकी दुनिया में कई मोड़ हैं। जिनमें उसे नये-नये अनुभव होते हैं –"कास्तु दी दुनिया गोल नईं लम्मी ऐ जेदे पर मोड़, मोड़ ते फी मोड़। हर मोड़ै उप्पर उन्नें इक नमां जीन भोगे दा ऐ।"

पति फामी को फांसी का आदेश होने के साथ ही कास्तु का दुर्भाग्य पूर्ण जीवन आरम्भ हो जाता है। उसी दिन से वह अपने भाग्य को बदलने के लिए संघर्ष आरम्भ कर देती है। अथक परिश्रम करके रुपये जुटाकर वकील करती है, न्यायालय में पहुंचती है और दाद-फरियाद करती है, पर सब व्यर्थ। उसके पति को फांसी और उसकी दुर्भाग्य के आगे पराजय। अब उस पर दुर्भाग्य की चोटें आरम्भ हो जाती हैं। सुरगल देवता की ओट में जगतू बरोआला उसके सतीत्व

को लूटने के लिए अनेक दांव खेलता है और अन्ततः एक दिन उस पर भूखे भेड़िए के समान झपट भी पड़ता है, किन्तु कास्तु का आत्म सम्मान उसे झकझोरता है और वह जगतू बरोआले को बालों से पकड़ती है और गर्ज कर कहती है – "ओ बरोआलेआ तेरिआं बांवरिआं गै नईं आत्मा बी काली ऐ। तूं केह मिथियै मिगी हत्थ पाया ? मकड़ा, मेरे म्हाशे ने किट्ठे दौं खून कीते हे, ते पापिया, इक खून करने जोगा जोर ते अजे मेरे बिच बी ऐ।" कास्तु के इन शब्दों में निश्चय ही एक विधवा की बेबसी ही नहीं अपितु आत्म सम्मान प्रिय नारी की सतोत्व शक्ति भी मुखरित हो रही है। ये शब्द चुनौती हैं समाज के धूर्त तथा व्यभिचारी वर्ग के लिए, एवं प्रेरणा हैं निस्सहाय स्त्री समाज के लिए। आश्रय की खोज में निकली कास्तु छौंकू चौकीदार का सच्चा प्यार पाकर उसे अत्मसमर्पण कर देती है, किन्तु जगतू बरोआला यह देख कर आगबबूला हो जाता है। वह अपने पाखण्डवाद का खुला प्रदर्शन करता है। सुरगल देवता की दुहाई दे कर गांव के अपठित समाज को यह विश्वास दिलाता है कि कास्तु कोई साधारण स्त्री न होकर एक जादूगरिनी है। धीरे धीरे गांव के लोगों के मन में यह विश्वास दृढ़ होता चलता है कि निश्चय ही कास्तु जादुगरिनी है। यहां तक कि छौंकू की मां भी लोगों की झूठी चर्चा पर विश्वास करके उसे जादूगरिनी समझने लगती है। कितनी विडम्बना है कास्तू के दुर्भाग्य की!

एक दिन कास्तु का दूसरा पति छौंकू भी मर जाता है। यह उस पर दुर्भाग्य की दूसरी चोट है। परन्तु इस बार वह अकेली नहीं है। उसे अपने बच्चे का कोमल आश्रय प्राप्त है। इसी लिए वह अपने भावी जीवन के लिए आश्वस्त है। पाखण्डी जगतू बरोआले का अन्ध भक्त समाज उसे छौंकू की हत्यारनी समझने लगता है। एक ओर चेले के छद्म वेष में इस कामी तथा पाखण्डी जगतू द्वारा कास्तु को डाकिनी तथा पतिघातिनी सिद्ध करना तथा स्वर्गीय छौंकू की माता द्वारा इसका समर्थन और दूसरी ओर ग्राम पंचायत का इसी मत के पक्ष में निर्णय निस्सहाय कास्तू को गांव छोड़ने के लिए विवश करता है।

निर्दयी समाज की उपेक्षा तथा नासमझी का शिकार कास्तु अब बस्ती से दूर गांव की एक गुफा में आश्रय लेती है। वहां उसका एक मात्र आश्रय उसका नन्हा पुत्र कौडू है। जगतू बरोआले के जघन्य प्रचार से अब भी उसका पिण्ड नहीं छूटता है। वह किसी न किसी ढग से कास्तु पर गलबा पाकर अपनी अतृप्त काम वासना शान्त करना चाहता है। जगतू की इस उद्देश्य पूर्ति में असफलता ही कास्तु के जीवन को इस प्रकार लगातार दुखी बनाने में कारण बनती

है। कास्तु जगतू का स्मरण करते ही उसके नाम पर थूकती है, उसे दुत्कारें-फटकारें देती है तथा आवेश में आकर अपने ही बाल पकड़ कर नोचने लगती है। अपनी बेबसी का प्रदर्शन करने के लिए इससे बढ़कर वह कर भी क्या सकती है? हां, इससे भी अधिक भावावेश में आजाने पर उसके मुंह से सहसा निकल पड़ता है—"ओ बरोआलेआ, गूगल धूफै दी वाशनां च खटोए दा तेरा असली रूप मैं पछाननिआं। तेरी त्रक्की दी आत्मा गोटें दे कीड़ें थमां बी मता नरक भोगै दी ऐ। पापिआ, तेरी देह लोहे दे भुण्डे खाई-खाई सगुवां चथोड़ होई गेई ऐ।" (अरे, बरोआले जगतू, गूगल धूप की सुगन्धि में ढका हुआ तेरा असली रूप मैं अच्छी प्रकार पहचानती हूँ।)

कास्तु का चरित्र अपनी मानवोचित दुर्बलता का एक बार फिर शिकार हो जाता है। अपने नन्हें पुत्र कौडू का सहारा होते हुए भी उसे एक अभाव खटकता ही रहता है, जिसकी पूर्ति वह कांसू को अपना कर करना चाहती है। समाज की विशेषतया जगतू बरोआले की निन्दा, झूठे दोषारोपण आदि की उपेक्षा करके वह एक बार फिर अपना घर बसाने के लिए छटपटाती है। इससे उसकी विरोधी परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की क्षमता का परिचय भी मिलता है। कास्तु के सामने दो ही रास्ते हैं- संघर्ष करते हुए अपना लक्ष्य प्राप्त करना या पराजित होकर अपना सम्मान तक खो देना। समाज में अपने समकक्ष नारी वर्ग की प्रतिनिधि कास्तू का परिस्थितियों से पराजित होकर भागना कहानीकार को कदापि अभिप्रेत नहीं है। वह इसीलिए उसे बार बार नये-नये संघर्ष में धकेलता हुआ उसे उसके लक्ष्य की ओर बढ़ाने के साथ-साथ कथा प्रवाह को गति शील बनाए रखता है।

कास्तू का नया आश्रय कांसू स्वयं एक निराश्रित व्यक्ति है। उसका न कहीं घर है, न कोई सम्पत्ति तथा न ही भाई बन्धु आदि। झूठी गवाहियां देकर तथा शराब बेचकर अपना पेट पालना उसका रोज का धन्धा है। स्वयं भी बेतहाशा शराब पीकर आए दिन इधर-उधर गिरना उसके लिए साधारण बात है। कहानीकार के शब्दों में —"ढट्ठना ते ओदे लेई चबात नईं हा। जिन्दगिया बिच ओ चलेया घट्ट ते ढट्ठेया मता हा।" एक बार जब वह अधिक पी जाने से मरनासन्न हो जाता है तो कास्तू अथक परिश्रम तथा सेवासुश्रूषा से उसके प्राण बचा लेती है। इस से कांसू कृतज्ञता से सराबोर हो कर कहता है—"इस बारी ते तूं तली देइयै बचाई उड़ेया ऐ।" परन्तु जीवन से निराश कास्तू के वेदना व्यथित हृदय में समाज के प्रति खीज के सिवाय कुछ नहीं है। इसी लिए वह उत्तर में कहती है—"आऊं बचाने आली हुन्दी तां अपने म्हाशे ते चौकीदारै गी

नईं बचाई लैन्दी। में बचाने आली नईं खाने आलीआं। फले दा बच्चा बच्चा मिगी गौड़ बंगालन आखदा ऐ।"

निस्सहाय कास्तू की सेवा के बदले कांसू उसे अपना कर उसका सदा के लिए संबल बनना चाहता है। बे सहारा कास्तू भी बेसहारा कांसू का सहारा पाकर अपने अभाव को मिटाना चाहती है। दोनों निराश्रित एक दूसरे को अपना कर एक दूसरे के पूरक बन जाना चाहते हैं। इस सन्दर्भ में कांसू की यह उक्ति कितनी उपयुक्त हैं—"मानु गी मानु दा स्हारा। मिगी बी सिर खट्टने गी कुतै कोई ठकानां नईं ऐ। जे हून तूं बचाया ऐ, तां सिर बी खट्टने गी जगह दे।" किन्तु जीवन से निराश कास्तू अब आत्म विश्वास भी खो चुकी है—"माढ़ी सिन्दिया विधना नै सन्दूर नईं सुवा लिखी दो ऐ। सो जिद्दरा-जिद्दरा लंगनियां उद्दरा-उद्दरा उड्डरै दी ऐ।" किन्तु कांसु द्वारा आत्म बिश्वास दिलाए जाने पर उसे अपनी मानवोचित दुर्बलता का एक बार फिर शिकार होना पड़ता है। कास्तु और कांसु का विवाह हो जाता है। कास्तु के इस तीसरे विवाह पर गांव में घर-घर चर्चा होती है। उधर जगतू बरोआला बीच बीच में सुरगल देवता का अपने में अवतरण होने का पाखण्ड रचाकर भविष्य वाणी करता है कि कास्तू अपने तीसरे पति का कलेजा भी एक न एक दिन अवश्य खा जाएगी। किन्तु इस बार उसके साथ धोखा दुर्भाग्य ने ही नहीं अपितु स्वयं कांसु ने भी किया। कास्तु का इकलौता पुत्र बीमार हो जाता है। कास्तू बच्चे के चांदी के कंगण उतार कर तथा उस में से एक घुंगरो निकाल कर बाकी कांसु को देकर कहती है कि इन्हें बेच कर दवाई ले आओ, कांसु चला जाता है। चिर प्रतीक्षा के बाद भी कांसु के न आने पर बच्चे की बीमारी औषधि के अभाव में अधिक बढ़ जाती है तथा अन्ततः उसकी मृत्यु भी हो जाती है। इलाज करवाने का पछतावा ही कास्तू के हृदय में रह जाता है।

कांसु की ओर से विश्वासघात और बच्चे की मृत्यु से कास्तू पर एक साथ दो बज्रपात होते हैं। कास्तू की आश्रय प्राप्त करने के प्रयत्न की यह अन्तिम असफलता है। अब वह इस दुनिया में सर्वथा निस्सहाय है। उस का यहां अब कोई नहीं है। सर्वथा कोई नहीं। कास्तू अब मात्र एक खण्डहर है तथा लुटी हुई उजड़ी हुई—"चिड़ी दा बोट सदा लेई सेई गेया। कास्तू दा आलड़ा, आसरमा ते ममता उजड़ी गेई।"

दूसरे दिन कांसु की मृत्यु का समाचार भी कास्तू को मिल जाता है।

दुर्भाग्य के द्वारा इस प्रकार प्रताड़ित कास्तू पर अब भी निर्दयी समाज को दया नहीं आई। कास्तू पर दुर्भाग्य की चोटों पर चोटें जगतू की तथा-कथित भविष्य वाणियों पर सचाई मोहरें साबित होती हैं।

अब कास्तू की दिनचर्या का आरम्भ अपने बच्चे की समाधि पर पत्ते बिछाने से होता है। इसका विश्वास है कि ऐसा करने से समाधि के भीतर बच्चे के कोमल शरीर पर गर्मी की कड़कती धूप का असर नहीं होगा। एक दिन उसे पत्ते तोड़ते समय झाड़ियों में से एक तीतर का बच्चा मिल जाता है। बस डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। कास्तू अब इस दुनिया में फिर अकेली नहीं है। वह उस तीतर के बच्चे को अपने स्वर्गीय पुत्र कौडू का ही प्रतीक समझ कर उसका नाम भी कौडू ही रख देती है। वह अपने पुत्र के कंगण की वह घुंगरी धागे में पिरो कर उसके गले में बांध देती है। समय-समय पर उसके मन में कौडू के विषय में अनेक कल्पनाएं आती हैं। वह कौडू का विवाह होने पर तथा उसके बच्चे होने पर सास तथा दादी बनने के दिवा स्वप्न देखती है। यह सोचते ही उसके मन में एक बड़ा आनन्द मिश्रित चुलबुला-पन होने लगता है। कभी-कभी वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है—"पुत्तरा, आऊं बी इक पक्खरू गै ही। पता निं कियां भुल-भलेखै बिधना ने मिगी मनुक्ख-जूनी विच सुट्टी उड़ेया। पर मनुक्खें अपनी बरादरी बिचा छेके दा गै रखेआ। मिगी न गै उड्डरन दित्ता ते न गै टुरन दित्ता।" (पुत्र, मैं भी एक पक्षी ही हूं। न जाने कैसे विधाता ने भूल कर मुझे यह मनुष्य योनि दी)

कितनी टीस, कितनी बे-बसी तथा कितनी खीज है समाज के प्रति कास्तू के इन शब्दों में।

इस प्रकार इस कहानी में नायिका कास्तू निरन्तर संघर्ष रत रहती हुई अपने दुर्भाग्य का सामना करती है तथा अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न करती रहती है। वह विरोधी परिस्थितियों के आगे झुकती नहीं बल्कि उनका सामना करती चलती हैं। अपने चारों ओर विरोधी समाज में रहती हुई वह न किसी से दया की भीख मांगती है और न कहीं भाग कर चली जाती है। इस से उसके चरित्र में धैर्य, कर्मठता तथा आत्म विश्वास आदि गुण उभर कर स्पष्ट हो जाते हैं।

कहानी के आरम्भ चारों ओर शिल्प विधान के कलात्मकता उजागर करने के सहायक होते हैं। इस कहानी शिल्प, कथ्य तथा भाषा-सौन्दर्य हर प्रकार से एक सशक्त कहानी कही जा सकती है